मासिक बुलेटिन • अंक 3 • जून 1996
दो रुपये • आठ पृष्ठ

दुनिया के मजदूरो एक हो!

बिगुल

लोकसभा चुनाव 1996 और उसके बाद

त्रिशंकु संसद, खिचड़ी सरकार - पूंजीवादी जनतंत्र का ढकोसला तार-तार

सरकार चाहे जिसकी बने, नई आर्थिक नीतियां जारी रहेंगी

मेहनतकश अवाम को चुनना है —

पूंजीवादी लूट, भ्रष्टाचार, दमन, बेरोजगारी-मंहगाई को झेलते हुए जीते चले जाना है या इस सामाजिक-राजनीतिक ढांचे को तबाह कर क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य कायम करना है?

लगभग 24 घण्टे तक संसद में चीख-पुकार, हल्लागुल्ला, गाली गलौज, शेरो शायरी, कबड्डी और कुत्ताघसीटी से भरी नौटंकी के बाद भाजपा सरकार का विगत 28 मई को पतन हो गया और 1 जून को कांग्रेस के समर्थन से नवगठित संयुक्त मोर्चा सरकार ने देवेगौड़ा के नेतृत्व में शपथ ग्रहण कर लिया।

कांग्रेसी समर्थन की बैसाखियों पर टिकी अल्पमत की यह खिचड़ी सरकार कबतक चलेगी, कहा नहीं जा सकता। हां, इतना जरूर कहा जा सकता है कि पांच सालों तक चलने की उम्मीद तो बस न के बराबर ही है। पाठकों को याद होगा, **'बिगुल'** के प्रवेशांक (अप्रैल 1996) में हमने लिखा था, *"भारतीय थैलीशाह और उनके विदेशी बड़े भइया लोग भी यही सोच रहे हैं कि अपनी थैली का जोर लगाकर, अपने अखबारों व प्रचार माध्यमों से हवा बनाकर वे किसे तख्ते ताऊस तक पहुंचायें, किसे शासन सौंपें। इस ऊहापोह में हो सकता है कि संसद में किसी का भी स्पष्ट बहुमत न हो। और तब अवसरवादी गंठजोड़ों, पालाबदल और पैंतरापलट के नये-नये करिश्मे देखने को मिलेंगे। साथ ही, यह खतरा भी बना रहेगा कि कोई भी कम बहुमत वाली सरकार हुकूमत के बढ़ते संकट के इस दौर में खुली तानाशाही का रूप धारण कर ले।"*

हम समझते हैं कि धार्मिक कट्टरपंथी भाजपा सरकार के पतन के बाद भी यह खतरा आज देश के सामने मौजूद है। मजदूरों-किसानों, तमाम मेहनतकशों और आम लोगों को इस बात को हमेशा ध्यान रखना होगा। ***आज हमारी यह चेतावनी है।***

पिछले लगभग डेढ़ महीने से जारी चुनाव और सरकारों के बनने-बिगड़ने की नाटकीय घटनाओं ने एक बात एकदम साफ कर दी है कि सरकार चाहे इस या उस दल या किसी भी गठबंधन की बने, बुनियादी नीतियों में कोई बदलाव आ पाना संभव ही नहीं है। आजादी के बाद समाजवाद के नाम पर नेहरू ने पब्लिक सेक्टर और प्राइवेट सेक्टर वाली जो मिली-जुली पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की नीतियां लागू की थी, वह भारतीय पूंजीवादी ढांचे की उस दौर की जरूरत थी। 1980 के बाद देश में पूंजीपतियों को और विदेशी लुटेरों को पूंजी लगाने के मामले में छूट देने का सिलसिला शुरू हुआ जो इन्दिरा, राजीव, वी.पी. सिंह और चन्द्रशेखर के प्रधानमंत्रित्व काल में जारी रहा। निजीकरण और उदारीकरण की इन्हीं नीतियों को खुले और सम्पूर्ण रूप में नरसिंह राव की सरकार ने नई आर्थिक नीति के रूप में पेश किया।

राव सरकार की नई आर्थिक नीति की काली विरासत

नई आर्थिक नीति का मतलब क्या है? - इसकी चर्चा भी थोड़े में कर ली जाये।

नई आर्थिक नीति का एक अर्थ है, जनता की नस-नस से प्रत्यक्ष-परोक्ष टैक्स वसूलकर सरकार ने पब्लिक सेक्टर में जो भी कारखाने लगाये, उन्हें बीमार या घाटे में दिखाकर बड़े पूंजीपति घरानों को तथा विदेशी कम्पनियों को सौंप देना। साथ ही, लोहा, बिजली, रासायनिक खाद, दवायें आदि सभी क्षेत्रों में नये कारखाने पब्लिक सेक्टर के बजाय प्राइवेट सेक्टर में ही लगाने की नीतियां तय करना। यही नहीं, धीरे-धीरे, एक-एक करके और किश्तों में बिजली विभाग, रोडवेज, सड़क और पुल बनाने वाले विभागों तक को पूंजीपतियों के हवाले कर देना।

जागरूक मेहनतकशों के लिए एक बेहद जरूरी लेख - एक बेहद जरूरी सन्देश
धीरज के साथ, गंभीरतापूर्वक इसे जरूर पढ़िए, और सोचिए कि करना क्या होगा और 'बिगुल' को अपने विचार लिखकर भेजिए

नई आर्थिक नीति का दूसरा अर्थ है, दुनिया भर के साम्राज्यवादियों के लिए पूंजी लगाकर देश की जनता को खुले तौर पर, मनमाने ढंग से लूटने-निचोड़ने की इजाजत देने के साथ ही बीमा और बैंकिंग के क्षेत्र में भी उन्हें खुले प्रवेश की सुविधा देना तथा साम्राज्यवादी देशों एवं आई.एम.एफ. विश्व बैंक जैसे देशों से बड़े पैमाने पर कर्ज लेकर उनका सूद चुकाने के लिए जनता को निचोड़ देना, यानी महाजनी पूंजी की जकड़बन्दी को और अधिक मजबूत बनाना।

नई आर्थिक नीति का तीसरा अर्थ है, साम्राज्यवादियों को भारत के विशाल कृषि क्षेत्र में घुसने का मौका देना और खाद-बीज कीटनाशक, उर्वरक, कृषि उपकरण आदि के बाज़ार पर कब्जा जमा लेने की पूरी छूट देना, उन्हें देशी बीजों-फसलों आदि को नष्ट करके किसानों को पूरी तरह अपने ऊपर आश्रित बना लेने, तथा पूरे पर्यावरण को तबाह कर देने की पूरी छूट देना।

गांवों में खेती की इस "पूंजीवादी तरक्की" का एकमात्र नतीजा जो हो सकता है वह यह कि करोड़ों गरीब और मध्यम किसान अपनी खेती ज्यादा पूंजी वाले और मुनाफे की खेती करने वाले बड़े किसानों और पूंजीवादी भूस्वामियों को बेचकर अपनी जगह-जमीन से उजड़ जायें, और इस तरह नये सर्वहाराओं की एक भारी आबादी दो जून की रोटी के लिए पूंजीपतियों-साम्राज्यवादियों-भूस्वामियों को अपना श्रम सस्ती से सस्ती दर पर

(पेज 8 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

हर शहर हर फैक्ट्री की एक ही कहानी.....4
मजदूरों की बढ़ती लूट घटती पगार.....5
मजदूरों के अधिकारों पर एक नये हमले की तैयारी.....5
बेकारी के शिकार मजदूरों के खुदकुशी करने का जिम्मेदार कौन?.....4
गांवों में पूंजी की घुसपैठ से उजड़ते मजदूरों की कहानी —
हमारे गांव में मशीन आयी और हम भागे शहर की ओर.....3
मजदूर साथियों से चन्द दो टूक बातें — एक सीधा आह्वान.....2

सम्पादक की ओर से

मजदूर साथियों से चन्द दो टूक बातें – *एक सीधा आह्वान*

साथियो,

'बिगुल' का यह तीसरा अंक आपके हाथों में है। हालांकि बड़े पैमाने पर मेहनतकश अवाम ने इसका स्वागत किया है और अपने इंकलाबी अखबार के रूप में इसे अपनाया है, पर हम इससे बहुत अधिक की आपसे उम्मीद रखते हैं।

'बिगुल' सही मायने में क्रान्तिकारी मज़दूर अखबार तभी बन सकता है, जब आप स्वयं कलम उठाये और इसके बारे में तफ़सील के साथ अपनी राय लिख भेजें। आप इसकी कमियों–कमजोरियों के बारे में हमें समझाकर बताइये और जाहिरा तौर पर, यह भी बताइये कि आपको इसमें क्या–क्या अच्छा लगा।

और यही नहीं, हम यह भी चाहते हैं आप अपने कारखाने, वर्कशाप या काम की पूरी परिस्थितियों के बारे में, उनकी हर किस्म की छोटी–बड़ी कठिनाइयों के बारे में, मालिक, सुपरवाइजर, फोरमैन के व्यवहार के बारे में, काम के घण्टों और सुरक्षा–प्रबंधों के बारे में रिपोर्ट तैयार करके भेजिए। आपके यहां वेतन–संशोधन, मंहगाई भत्ता, ओवरटाइम आदि की क्या स्थिति है? लेबर कोर्टों में कितने मामले हैं? छंटनी–तालाबंदी आदि की क्या स्थिति है? मालिकों–अफसरों का रवैया उदार है या दमनकारी? किसी न किसी तरह से सताये जा रहे मजदूर को लेबरकोर्ट से क्या इंसाफ मिला है या मिल पाता है?

इस मामले में ट्रेड यूनियनों की क्या भूमिका है, उनके नेताओं की क्या भूमिका है? वे आन्दोलन और संघर्ष द्वारा मालिकों पर कुछ दबाव बनाते हैं या केवल समझौता–वार्ताओं–मध्यस्थताओं की राजनीति करते हैं? इन ट्रेड यूनियनों की राजनीतिक भूमिका क्या है ये तमाम संसदीय पार्टियों से जुड़ी हैं या कुछ स्वतंत्र भी हैं? किन–किन कारणों से ये अलग–अलग हैं और मजदूरों को भी बांट रखा है? यानी इनके आपसी मतभेद के मुद्दे क्या हैं आपके ख्याल से ट्रेड यूनियन आंदोलन की स्थिति क्या है? यह तरक्की कर रहा है या इसमें गिरावट आ रही है? आप ट्रेड यूनियनों से क्या चाहते हैं?

क्या आज ये मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्षों की एक अनिवार्य पाठशाला की भूमिका निभा पा रही हैं? हमें इन सभी मसलों पर आपसे जानकारी चाहिए और आपकी राय चाहिए?

आप समाजवाद, सर्वहारा क्रान्ति और मजदूर राज के बारे में क्या सोचते हैं? आपके खयाल से इस ओर आगे बढ़ने यानी पूंजीवाद साम्राज्यवाद के खिलाफ फैसलाकुन लड़ाई में ट्रेड यूनियन आन्दोलन क्या भूमिका निभायेगा और किस प्रकार?

पूरे देश के पैमाने पर उदारीकरण और निजीकरण की नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद से करोड़ों मजदूर बेकार हो चुके हैं, पुराने करखाने बंद होते जा रहे हैं, गरीब और मध्यम किसान अपनी जगह–जमीन से उजड़ते जा रहे हैं, एक के बाद एक ट्रेड यूनियन अधिकारों को छीना जा रहा है। आप के कारखाने, शहर, गांव या इलाके की क्या स्थिति है? पिछले पांच वर्षों के दौरान क्या–क्या विशेष बदलाव आये हैं? हम आपसे यह जानकारी भी विस्तार से चाहते हैं।

आप अपनी कालोनी या बस्तियों की स्थिति अपनी रोज़मर्रे की जिन्दगी की परेशानियों–समस्याओं के बारे में भी विस्तार से 'बिगुल' के लिए रपटें तैयार करके भेजिये।

'बिगुल' वेतनभोगी पत्रकारों–कर्मचारियों–एजेण्टों के भरोसे चलने वाला अखबार नहीं है। मजदूर ही इसके सही संवाददाता हो सकते हैं, पत्रकार हो सकते हैं। मज़दूर ही इसके वितरक, एजेण्ट और हॉकर होंगे। यह मजदूरों के (और साथ ही मजदूर क्रान्ति के समर्थक प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के) सहयोग से प्रकाशित होता है। इसके सम्पादन और लेखन की टीम से जुड़े जो साथी मध्यमवर्गीय परिवारों से आये हैं, वे भी मजदूरों की जिन्दगी और संघर्षों से जुड़कर एकरूप हो जाने की प्रतिज्ञा किये हुए लोग हैं।

अतः 'बिगुल द्वारा मज़दूरों की क्रान्तिकारी आवाज बुलन्द करने के लिए जरूरी है कि आप बिगुल के संवाददाता बनें, इसमें नियमित रपटें और लेख भेजें, इसमें छपी चीजों पर अपनी राय और सलाह भेजें, साथ ही अपने इलाके में इसका वितरण करें और ज्यादा से ज्यादा मेहनतकशों तक इसे पहुंचायें।

बहुत जरूरी है कि 'बिगुल' को पसन्द करने वाले और इसके मकसद से सहमत मजदूरों को संगठित किया जाये और छोटे–छोटे ग्रुपों में उन्हें इकट्ठा करके मजदूर आन्दोलन, ट्रेड यूनियन आदि की समस्याओं तथा सामाजिक– राजनीतिक स्थितियों पर नियमित बातचीत की जाये तथा मेहनतकश क्रान्तियों की समस्याओं, इतिहास, सिद्धान्त आदि पर कुछ पढ़ाई– लिखाई भी की जाये। यह छोटी सी शुरुआत एक महत्वपूर्ण, बहुत बड़ी शुरुआत भी हो सकती है। पहली बात यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी हममें एक नई शुरुआत करने का साहस हो, संकल्प हो और यह विश्वास हो कि यह दुनिया यहीं रुकी नहीं रहेगी।

पूरी दुनिया की सम्पदा के निर्माताओं को फिर से बगावत करनी ही होगी और बग़ावत से क्रान्ति की दिशा में आगे बढ़ना ही होगा। हमें इन हालात को बदलने के लिए इनको समझना है और इनको बदलने की जद्दोजहद के दौरान खुद को बदल लेना है।

मजदूर वर्ग के नये क्रान्तिकारी जागरण और नये क्रान्तिकारी ज्ञानोदय का यही संदेश है।

■ पाठक मंच

न्यायपालिका के 'असली चेहरे' को भी उजागर करें

छात्रों के क्रान्तिकारी अखबार आह्वान कैम्पस टाइम्स में अधिवक्ता डी.सी. वर्मा का एक लेख पढ़ा था कि कानून व्यवस्था के रक्षक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश का चुनाव देश का राष्ट्रपति करता है, और केन्द्र में रहने वाली सरकार अपने विचार वाले राष्ट्रपति को चुनती है तो कैसे सम्भव है कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश केन्द्र सरकार के विरोध में न्याय देंगे। एकदम सही एवं संविधान संगत बात है।

तो बात यह आती है कि मजदूरों, किसानों, गरीब तबके के लोगों को कानून व्यवस्था में जो आस्था दिखाई पड़ती कोरी बकवास है। आम आदमी के लिए लेबर कोर्ट, हाईकोर्ट या रेल विभाग या अन्य विभाग से सम्बन्धित जो ट्रिब्यूनल कोर्ट बना दिया गया जिसका नियम कहता है कि 90 दिन के अन्दर ही न्याय दे देगा जो कि एकदम सफेद झूठ है, वहां उसी को न्याय मिलता है जो मालदार हो। बाकी लोग केवल कल्पना में जीते रहते हैं। न्याय उनको अवश्य ही मिलेगा लेकिन उस स्तर तक जाते-जाते मृत्युशय्या पर आ जाते हैं और सुप्रीम कोर्ट का नाम सुनकर ही स्वर्ग सिधार जायेंगे। क्योंकि उसके लिए तो उनके वकील से लेबर कोर्ट - फीस तक इतना अधिक धन लिया जाता है जो आम आदमी के हैसियत के बाहर की बात है। फिर कम पैसे वाला व्यक्ति यह बात कैसे पचा ले कि सब नियम-कानून ठीक होते हुए भी वकील साहब बिक न जायेंगे। वकालत की गरिमा केवल दिखावा सी लगती है। सब चीज लक्ष्मी देवी ही तय करती है।

कचहरी में इतनी लचर व्यवस्था है कि कभी समय से बाबू नहीं तो कभी साहब का चपरासी और कभी वकील साहब नहीं। और तारीख लेने-देने की इतनी झमेला तारीख याद करने एवं बाबुओं की फीस भरने में ही आम आदमी अपनी मूल समस्या को ही भूल जाता है। इससे बेहतर समझता है कि ठेके पर गुण्डों को बुलवाकर अपना सही-गलत कर ले। यानि यहां पूरा भारतीय संविधान जिसकी लाठी उसकी भैंस पर टिका है। सम्पादक जी, न्यायपालिका के 'असली चेहरे' को भी अपने अखबार में उजागर करें ताकि हम लोग जैस कम समझदार व्यक्ति सजग हो सकें।

— संतोष शर्मा
गोरखपुर

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

(1) 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

(2) 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

(3) 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को यह नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

(4) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर ''कम्युनिस्टों'' और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

(5) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

◗ शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ◗ ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ◗ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ◗ विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ◗ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 7) ◗ सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, काजमी चैम्बर्स, 5, पार्क रोड, लखनऊ ◗ राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ ◗ अरविन्द सिंह, 123, बिड़ला छात्रावास, बी०एच०यू०, वाराणसी ◗ विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर – 273402 ◗ डा० डी०के० सचान, (शस्य वैज्ञानिक), A-308 आवास विकास (गंगापुर), रामपुर –244 901 ◗ प्रो० प्यारे लाल, 139, फूलबाग कालोनी, पन्तनगर कृषि विश्व–विद्यालय, पन्तनगर–263145 ◗ राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र ◗ एतकाद अहमद, डिपार्टमेण्ट ऑफ फाउण्डेशन ऑफ एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली ◗ संतोष शर्मा, Q.No.-L/61K, बरौनी रेलवे कालोनी, बरौनी, बेगूसराय ◗ चन्द्रकेतु नारायण शर्मा, एडवोकेट, सांचीपट्टी, बागमली गाछी, स्थान–पो–हाजीपुर, जि–वैशाली ◗ दीपशिखा पत्रिका मंडप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय,पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर ◗ मैत्रेयी साहित्य संगम, सर्वे आफिस के सामने, लालबाग के०डी०एस० दरभंगा –846004 ◗ अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव, द्वारा शैलेन्द्र श्रीवास्तव, बरियारी चक, मेंहसी, पूर्वी चम्पारण ◗ जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. कैरन जि. जलपाईगुड़ी –735205 ◗ डा. हरियश राय, ए–205 सुजल अपार्टमेंट, सेटेलाइट रोड, रामदेव नगर, अहमदाबाद–380054 ◗ पुस्तक–पत्रिका बिक्री–वितरण केन्द्र डिल्ली बाजार चढ़ाव के पास (निकट पद्म कन्या स्कूल), काठमांडू ◗ विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाईन, बुटवल, लुम्बनी, नेपाल ◗ जलजला पुस्तक सदन, धमवोजी चौक, नेपालगंज, बांके, नेपाल

गांवों में पूंजी की घुसपैठ की कहानी – एक उजड़े हुए मजदूर की जुबानी

हमारे गांव में मशीन आयी और हम भागे शहर की ओर

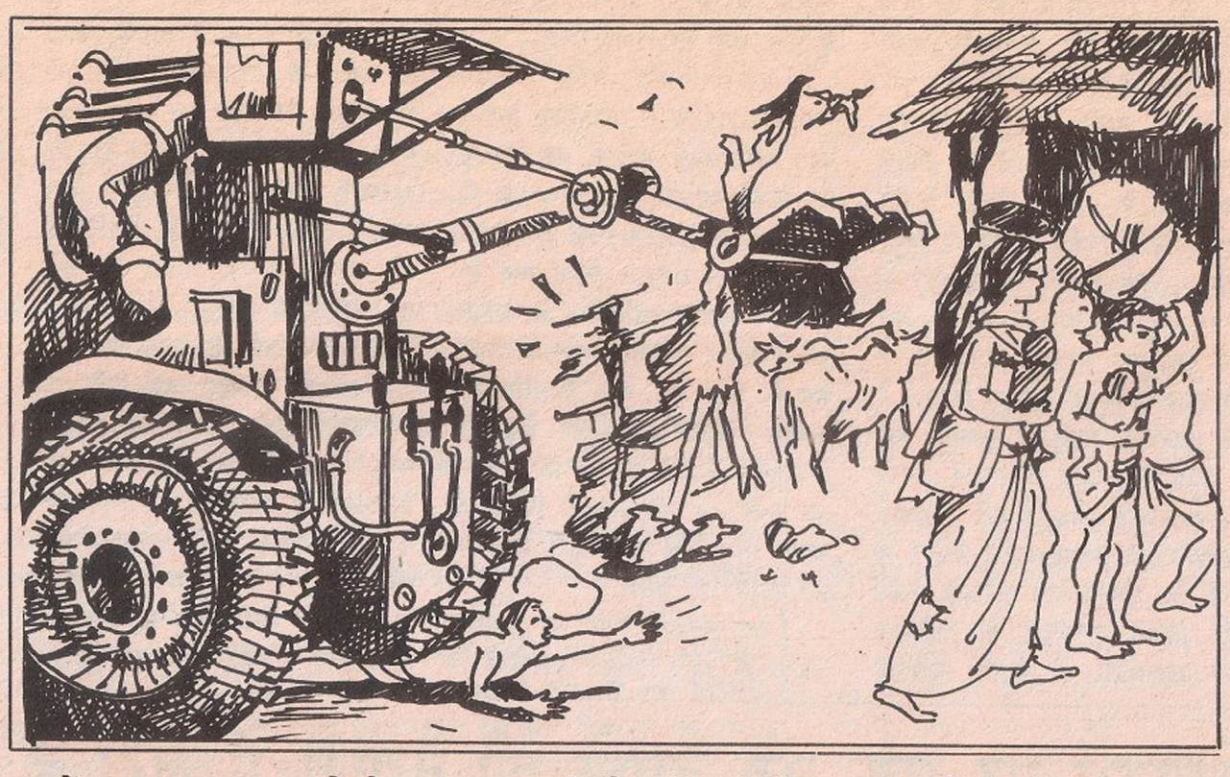

हमारे गांव की सम्पूर्ण आबादी 400 के आसपास है। जिसमें 60 फीसदी आबादी के जीविकोपार्जन का मुख्य आधार खेत मजदूरी है। यद्यपि इन मजदूर परिवारों के पास अपनी खेती भी है जो केवल नाममात्र की है। यानी लगभग 10 या 5 बिस्सा प्रति परिवार। जिसकी उपज से परिवार का दो माह का खर्चा भी नहीं चल सकता है। जाहिरा तौर पर इनके पेट भरने का मुख्य आधार मजदूरी ही है। दूसरी तरफ गांव के 20 प्रतिशत नाई लोग हैं। उनके भी जीविकोपार्जन का मुख्य आधार मजदूरी है। नाई परिवारों के पास भी नाममात्र की खेती है और उनका अपना खानदानी पेशा भी है। ये नाई बंधु जेवरा' पर बाल-दाढ़ी बनाने का कार्य करते हैं। लेकिन इनके जेवरा की आमदनी कोई खास नहीं है। (जेवरा - वर्ष भर दाढ़ी बनाने के एवज में धान गेहूं की फसल पर एक निश्चित मात्रा में अनाज के रूप में मिलने वाली मजदूरी)

गांव में 5 प्रतिशत के आसपास पंडित, कहार, धोबी, लोहार और तेली (प्रत्येक एक-एक घर) रहते हैं। इन्हें किसानों ने अपनी सुविधा के लिए बसाया हैं ताकि इनकी जातीय (पेशागत) सेवा ली जा सके।

दूसरी तरफ हमारे गांव में 13-14 परिवार (कुर्मी) किसानों के हैं। जिनके पास 10 से 50 बीघे तक की जमीन है। इन्हीं किसानों में 7-8 लोग ऐसे हैं जिन्हें मजदूरों की जरूरत कभी-कभार पड़ती है या नहीं ही पड़ती है। प्रायः ये लोग अपना कृषि कार्य खुद कर लेते हैं। शेष 6-7 किसान ही ऐसे हैं जिन्हें मजदूरों की जरूरत पड़ती है। यानी इन्हीं 6-7 लोगों के वहां मजदूरी करने के लिए गांव की 60 फीसदी आबादी आस लगाये बैठी रहती थी। गांव के ये किसान भी इन्हीं मजदूरों पर निर्भर रहते थे। किसानों की रवी-खरीफ और गन्ने की खेती इन्हीं मजदूरों द्वारा होती थी। अब हमारे गांव के किसानों के पास कृषि के सभी यंत्र उपलब्ध हैं। यानी जब उनके पास ट्रैक्टर, पम्प सेट, दवाई मशीन (थ्रेसर) आदि मौजूद है। इन यंत्रों के आ जाने के कारण मजदूरों की जरूरत काफी कम मात्रा में पड़ने लगी है। किन्तु जब तक मजदूर गांव में टिके रहे क्योंकि उनके पास जब भी मजदूरी के दो आधार थे। पहला गेहूं की कटाई और दूसरा धान की रोपाई एवं कटाई। इसके अलावा मजदूर सबसे सस्ते तब हो जाते हैं जब उनको दिनभर गन्ना छीलने के बाद मजदूरी के रूप में मात्र 10 या 12 रुपये के मूल्य की गन्ने की पत्ती मिलती है। वैसे अधिकांश मजदूर गन्ने की छिलाई इसलिए करते हैं ताकि अपने छप्पर की मरम्मत के लिए फूस इकट्ठा कर लें। इसीलिए ठंडी के दिनों में गेहूं की कटाई के पहले तक मजदूर का यही एक मात्र कार्य होता है। इस कार्य में महिला मजदूरों की संख्या अधिक होती है।

वर्षों पहले जब कभी-कभार गांव के आस-पास कोई सड़क निकलती थी तो इसमें मजदूरों की रोजी लग जाती थी। लेकिन पिछले कई वर्षों से विकास कार्य ठप्प हो जाने से मजदूरों की यह रोजी भी अब नहीं लग पाती है। गांव के आस-पास ईंट के भट्ठे भी हैं लेकिन इन भट्ठामालिकों को अब क्षेत्रीय मजदूरों की कोई जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि अब ये अपने भट्ठों पर विहार के मजदूरों को रखने लगे हैं। कारण यह है कि बाहर से लाये गये मजदूरों का शोषण भट्ठा मालिक ज्यादा अमानवीय ढंग से कर लेता है। और पराधीन होने के कारण ये मजदूर चूं तक नहीं कर पाते हैं।

यहां पर हम पाते है कि गांव में मजदूर की जरूरत मात्र धान की रोपाई, कटाई एवं गेहूं की कटाई तथा गन्ने की छिलाई में ही पड़ती है।

वैसे गांव के सभी मजदूरी में गेहूं की कटिया मजदूरों का मुख्य आधार हुआ करती थी। इसीलिए गांव में यह कहावत आज तक प्रचलित थी कि, " चैत में चमार (मजदूर) बउराय जाय लिन" यानी चैत में मजदूरों में खुशी की लहर दौड़ जाती थी। चैत में मजदूर अपने परिवार के सभी वयस्क सदस्यों को साथ लेकर खूब मजदूरी करता था। वास्तव में चैत ही वह महीना होता था जिसके आने से मजदूरों के बच्चों के साल भर की रोटी का इन्तजाम हो जाता था। चैत के लगते ही गांव के मजदूर 20-25 या 25-30 की टोलियां बनाकर ठेके पर गेहूं की कटाई करते थे। टोलियों के सभी मजदूर अपना रात्रि का भोजन तैयार करके सूरज डूबते-डूबते किसान के खेत में पहुंच जाते थे। और रात्रि 10 बजे तक कटाई करने के बाद भोजन करके एक घंटा आराम करने के बाद वे पुनः कार्य पर लग जाते थे। सुबह 9-10 बजे तक मजदूर अपना काम करके घर आते थे और खा-पीकर सो जाते थे। यह दिनचर्या लगभग एक महीने तक चलती थी। और मजदूर कमरतोड़ मेहनत करके अपने परिवार के लिए रोटी का इन्तजाम कर लेता था। यही मजदूरों का मुख्य आधार था जिसके सहारे मजदूर आज तक गांव में टिके रहें।

लेकिन पिछले दो वर्षों से गेहूं की कटाई-दंवाई की मशीन के आ जाने से मजदूरों की रही-सही मजदूरी भी समाप्त हो गयी। अब किसान गेहूं की कटाई इसी मशीन द्वारा करवाते हैं। यह मशीन किसान के लिए काफी लाभदायकसिद्ध हुई है। पहली बात, इसमें समय बहुत कम लगता है। दूसरे गेहूं की ढुलाई एवं दंवाई का खर्च नहीं लगता। यह काम कटाई के साथ वही खेत में हो जाता है। तीसरे मजदूर से कटाई-दंवाई कराने की अपेक्षा इसमें खर्च लगभग आधा पड़ता है। चौथे गेहूं के भीगने की संभावना नहीं रहतीं। यानी किसान के लिए यह मशीन बहुत फायदे की चीज है।

दूसरी तरफ पिछले दो वर्षों से इस मशीन के आने से मजदूरों के बच्चों के मुंह का निवाला छिन गया है। जहां चैत के महीने में मजदूरों में मजदूरी करने की होड़ लग जाती थी, आज उसी चैत में मजदूर खाली घर पर बैठा इसी सोच में डूबा रहता है कि बच्चों का पेट कैसे भरेगा। अब वह पुरानी कहावत झूठी साबित हो रही है कि, "चैत में चमार बउराय जाय लिन" यानी अब गांव में मजदूर की जरूरत धान की बेहन लगाने, कटाई करने एवं गन्ने की छिलाई करने में ही रह गयी है। वास्तव में अब मात्र धान की मजदूरी के लिए और छप्पर की मरम्मत हेतु गन्ना छिलने के लिए, मजदूर गांव में ठहरना उचित नहीं समझ रहा है। और अपने बच्चों के दो वक्त की रोटी के लिए तेजी से शहर की तरफ भाग रहा है। अपने बच्चों को छोड़कर सुदूर बड़े-बड़े शहरों में नौकरी करने आये इन मजदूरों के साथ क्या गुजरती है वह चर्चा अगले अंक में। इसमें केवल आप इतना जान लीजिए कि मशीनों के आ जाने के कारण गांव में अब मजदूरों की रोजी-रोटी का कोई माध्यम नहीं रह गया है।

(अगले अंक में - महानगरों में मजदूरों की नारकीय जिन्दगी)

— शिवरतन,
दिल्ली

रुपये के लिए सर्वत्र होने वाली इस हाथापाई में छोटे लोग, छोटे दस्तकार या छोटे किसान ही सबसे ज्यादा घाटे में रहते हैं: होड़ में वे बड़े व्यापारियों या धनी किसानों से सदा पीछे रह जाते हैं। छोटे आदमी के पास कभी कुछ बचा नहीं होता। वह आज की कमाई को आज ही खाकर जीता है। पहला ही संकट, पहली ही दुर्घटना उसे अपनी आख़िरी चीज तक गिरवी रखने के लिए या अपने पशु को मिट्टी के माल बेच देने के लिए लाचार कर देती है। किसी कुलक या साहूकार के हाथ में एक बार पड़ जाने पर वह शायद ही अपने को उनके चंगुल से निकाल पाये। बहुधा उसका सत्यानाश हो जाता है। हर साल हजारों-लाखों छोटे किसान और दस्तकार अपने झोंपड़ों को छोड़कर, अपनी ज़मीन को मुफ़्त में ग्राम समुदाय के हाथ सौंपकर उजरती मजदूर, खेत-बनिहार, बे-हुनर मजदूर, सर्वहारा बन जाते हैं। लेकिन धन के लिए इस संघर्ष में धनी का धन बढ़ता जाता है। ....जनता की गरीबी को दूर करने का एक ही रास्ता है - मौजूदा व्यवस्था को नीचे से ऊपर तक सारे देश में बदलकर उसके स्थान पर समाजवादी व्यवस्था कायम करना।

– लेनिन (गांव के गरीबों से)

"दृढ़ संकल्प रखो, कुरबानियों से न डरो और हर तरह की कठिनाइयों को दूर करते हुए विजय प्राप्त करो।"

— माओ त्से-तुङ

"हम कम्युनिस्ट बीज के समान होते है और जनता भूमि के समान होती है। हमलोग जहां कहीं भी जाएं, वहां जनता के साथ एकता कायम करें, उसमें अपनी जड़ें जमा लें और उसके बीच फलें-फूलें।"

— माओ त्से-तुङ

सिर चढ़कर बोलती सच्चाई : मज़दूरों की बढ़ती लूट, घटती पगार

नई आर्थिक नीति यानी पूंजीपतियों को खुली लूट की छूट

नई आर्थिक नीति लागू करते समय नरसिंह राव की कांग्रेसी सरकार ने इस सदी के अंत तक पूरी आबादी को खुशहाल बना देने का वायदा किया था। एक के बाद एक बहुतेरे सरकारी कारखानों को पूंजीपतियों के हवाले कर दिया गया और यह सिलसिला आज भी जारी है। नये कारखाने अब सरकारी क्षेत्र में नहीं लग रहे हैं बल्कि विदेशी कम्पनियों और देशी पूंजीपतियों द्वारा लगाये जा रहे हैं। भाजपा और संयुक्त मोर्चा के छाते के नीचे इकट्ठे विभिन्न दलों के मदारियों ने भी पूंजीपतियों से वायदा किया है कि राव सरकार द्वारा जारी "आर्थिक सुधारों" को वे जारी रखेंगे, हालांकि चुनाव से पहले वे गला फाड़-फाड़कर नई आर्थिक नीति का विरोध कर रहे थे।

मगर सरकारी कारखानों को निजी क्षेत्र के पूंजीपतियों के हवाले करने और देशी-विदेशी पूंजीपतियों को पूंजी लगाने की खुली छूट देने से क्या वास्तव में खुशहाली आई है? पिछले पांच वर्षों के भीतर करोड़ों मजदूर छंटनी और तालाबंदी के शिकार होकर सड़क पर आ गये हैं। नये रोजगार के अवसर बहुत ही कम हो गये हैं। और अब खुद एक सरकारी रिपोर्ट से ही इस सच्चाई का भी खुलासा हो गया है कि 1990 के पहले के मुकाबले बाद के सालों में, उद्योगों में पब्लिक सेक्टर या सार्वजनिक क्षेत्र (यानी सरकारी कारखानों) के बजाय प्राइवेट सेक्टर या निजी क्षेत्र (यानी देशी पूंजीपति घरानों और विदेशी कम्पनियों के मालिकाने वाले कारखानों) की बढ़ती भागीदारी के साथ ही मजदूरों की तनख्वाहें वास्तव में कम होती चली गई हैं।

एक सरकारी संस्था केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन ने औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों की जिन्दगी पर निजीकरण के असर पर हाल ही में एक रिपोर्ट प्रकाशित की है, जिसमें इस बात को स्वीकार किया गया है। रिपोर्ट के मुताबिक अभी देश में मजदूरों की पचहत्तर फीसदी आबादी निजी क्षेत्र में काम कर रही है और शेष पच्चीस फीसदी सार्वजनिक क्षेत्र में। सार्वजनिक क्षेत्र के मजदूरों को औसतन 35 रुपये 44 पैसे मजदूरी मिलती है जबकि निजी क्षेत्र के मजदूरों को सिर्फ 20 रुपये 71 पैसे।

इस अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक 1970 के पहले स्थापित कारखानों में मजदूर सालाना औसतन 32 हजार 46 रुपये वेतन पाते हैं जबकि 1970 से 1983 के बीच स्थापित कारखानों के मजदूरों को सिर्फ 19 हजार 330 रुपये सालाना वेतन मिलता है। जो कारखाने 1980 से 1993 के बीच लगे हैं उनके मजदूरों की स्थिति तो और बदतर है। वे 1970 के पहले लगे उद्योगों के मजदूरों की तुलना में सिर्फ 52 फीसदी ही वेतन पाते हैं।

1970 के पहले खड़ा किये गये उद्योगों में सौ रुपये के योगदान पर मजदूरों को औसतन 38 रुपये 45 पैसे मिलते हैं, जबकि 1980 से 1993 के बीच स्थापित उद्योगों में यह औसत सबसे कम, यानी 21 रुपये चार पैसे है। यानी नई मशीनों वाले इन कारखानों में उत्पादन में जितनी बढ़ोत्तरी हुई है, मजदूरों के श्रम की लूट भी उतनी ही अधिक बढ़ गई है। आंकड़े यही बताते हैं। जो कारखाने 1970 से 1979 के बीच लगे थे, उनमें लगाई जाने वाली पूंजी पर लाभ की दर सबसे अधिक 42.28 प्रतिशत थी। वर्ष 1993 में निजी क्षेत्र में पूंजी लगाने पर लाभ की दर 43.47 प्रतिशत थी जबकि उस वर्ष सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों में यह दर सिर्फ 15.96 प्रतिशत ही थी।

स्पष्ट है कि निजीकरण और उदारीकरण की जो लहर आज हमारे देश में और पूरी दुनिया में चल रही है उसका एकमात्र मतलब है, नई-नई मशीनों के जरिए मजदूरों के श्रम को ज्यादा से ज्यादा निचोड़कर देशी-विदेशी लुटेरों के लिए ज्यादा से ज्यादा मुनाफा की गारण्टी।

मजदूरों के अधिकारों पर एक नये हमले की तैयारी में जुटा है पूंजीपति वर्ग

मजदूर साथियो, चेतो! एकजुट हो! जवाबी लड़ाई की तैयारी करो!

नई सरकार ने देशी-विदेशी पूंजीपतियों को बढ़-चढ़कर भरोसा दिलाया है कि आर्थिक "सुधार" की सारी नीतियां पहले की तरह ही चलती रहेंगी। यह वादा मिलने के साथ ही पूंजीपति वर्ग अब श्रम-बाजार के सुधार के नाम पर मजदूरों के अधिकारों में और कटौती करने की तैयारी में जुट गया है।

पूंजीपतियों की संस्था फेडरेशन आफ इंडियन चैम्बर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री (फिक्की) अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन और आल इंडिया आर्गनाइजेशन आफ इम्प्लायर्स के साथ मिलकर इस मुद्दे पर एक सम्मेलन करने जा रही है। इसमें ट्रेड यूनियन एक्ट 1926 और औद्योगिक विवाद अधिनियम में संशोधन करने से लेकर मजदूरों के विभिन्न आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों में कटौती करने के प्रस्तावों पर बातचीत होनी है।

ट्रेड यूनियन एक्ट में जो संशोधन कराने की कोशिश हो रही है उसमें प्रमुख है मजदूर और मैनेजमेंट के बीच सम्बन्धों में तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप को समाप्त करना और केवल दो पक्षों - मैनेजमेण्ट और मजदूर के बीच ही मामले को सीमित रखना। यानी ट्राईपार्टाइट को खत्म करके केवल बाइपार्टाइट को मान्यता देना।

यह एक खतरनाक कदम होगा। तीसरे पक्ष के रूप में अक्सर सरकार हस्तक्षेप करती रही है और जनता के दबाव के चलते उसे मजदूर के हितों को सुरक्षित रखने के लिए कुछ करना पड़ता रहा है। इसके अलावा राजनीतिक पार्टियां और मजदूरों को संगठित करने वाले अन्य ट्रेड यूनियन नेता भी तीसरे पक्ष के रूप में हस्तक्षेप करते रहे हैं। यह सही है कि ज्यादातर मौकों पर राजनीतिक पार्टियां मजदूरों का अपने चुनावी फायदे के लिए इस्तेमाल करती रही हैं लेकिन कहानी सिर्फ इतनी ही नहीं है।

यूनियन के नेतृत्व और कार्यकारिणी में बाहर के लोगों को शामिल करने का हक मजदूरों ने लम्बी लड़ाई लड़कर हासिल किया था। मजदूर आन्दोलन के शुरुआती दिनों में यूनियन बनाने की कोशिश करते ही मजदूर को बर्खास्त कर दिया जाता था। और एक बार बर्खास्त होने के बाद उसे "बाहरी आदमी" कहकर मजदूरों को संगठित करने से रोका जा सकता था। मालिकों की इस चाल का मुकाबला करने के लिए ही मजदूरों ने यह अधिकार हासिल किया था। क्या आज यह खतरा समाप्त हो गया है?

इसके अलावा मजदूरों में बड़े पैमाने पर शिक्षा और राजनीतिक समझदारी की कमी को देखते हुए भी उन्हें अधिक शिक्षित पार्टी कार्यकर्ताओं या ट्रेड यूनियन कर्मियों की मदद की जरूरत पड़ती थी। आज हालात पहले से कहीं बदतर ही हुए हैं। हर उद्योग में भारी संख्या में कैजुअल मजदूर काम कर रहे हैं जिनका सबसे ज्यादा शोषण हो रहा है और ज्यादातर जगहों पर वे संगठित भी नहीं हैं। "बाहरी आदमियों" के नाम पर मैनेजमेण्ट को उनके बीच संगठन बनाने के प्रयासों को रोकने का एक औजार मिल जायेगा।

सोचने की बात है कि इतने वाजिब हक को छीनने की हिम्मत मालिकान को कैसे हो रही है? इसकी जिम्मेदारी सरकार, चुनावी पार्टियों तथा ट्रेड यूनियनों के नेतृत्व - तीनों पर है। एक तो सरकार लगातार अपने वायदों से मुकरती रही है और दूसरे चुनावी पार्टियां मजदूरों का केवल चुनावी इस्तेमाल करने में लगी रहीं। ज्यादातर बड़ी ट्रेड यूनियनों के नेताओं ने छोटी-छोटी लड़ाइयों में मजदूरों को उलझाये रखा, उनको शिक्षित करने व उनकी राजनीतिक चेतना आगे बढ़ाने का प्रयास नहीं किया।

मजदूरों के हकों पर हमला केवल हमारे देश में नहीं हो रहा है। आज के दौर में लगभग एक ही जैसी आर्थिक नीतियां सारी दुनिया में लागू की जा रही हैं। बहुत से देशों में मजदूर भाइयों ने पानी नाक से ऊपर होता देखकर संघर्ष शुरू कर दिया है। जर्मनी देश के प्रधानमंत्री हेल्मुट कोल द्वारा वेतन और सामाजिक सुविधाओं में कटौती के प्रस्तावों के खिलाफ वहां का मजदूर सड़कों पर उतर चुका है। वहां पिछले पन्द्रह दिन से लाखों मजदूर हड़ताल पर हैं और राजधानी तक में हड़तालों का असर फैलता जा रहा है। अभी कुछ ही महीने पहले इस देश में हर क्षेत्र के मजदूरों ने जबर्दस्त हड़तालें की थी जिससे कई दिनों तक आधा देश जाम सा हो गया था। उनकी लड़ाई का साथ देने के लिए छात्र व मध्यवर्ग के लोग भी सड़क पर आ गये थे।

भारत के मजदूरों को भी अपने भाइयों के खून-पसीने की कीमत पर हासिल किये गये अधिकारों की हिफाजत के लिए चौकन्ना और जुझारू बनना पड़ेगा।

बोलीविया के मेहनतकश बग़ावत की राह पर

यहां से दूर, पृथ्वी के लगभग दूसरे छोर पर, लातिन अमेरिका के छोटे से देश बोलीविया के मेहनतकशों ने भी विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की जालिम लुटेरी आर्थिक नीतियों के खिलाफ बगावत का झण्डा उठा लिया है और अमेरिकी धौंसपट्टी तथा अपने देश की पूंजीवादी सत्ता के दमन के खिलाफ निर्भीकता से सीना तानकर खड़े हो गये हैं।

पिछले पांच वर्षों से लागू जिन नई आर्थिक नीतियों का नतीजा हम लगातार बढ़ती बेरोजगारी, मंहगाई, पुराने कारखानों में तालाबन्दी, लाखों मजदूरों की छंटनी, सरकारी कारखानों को पूंजीपतियों को सौंप देने, विदेशी कंपनियों को खुली लूट की छूट देने, गरीब और मध्यम किसानें की तबाही तथा खेती-बाड़ी एवं परंपरागत उद्यमों की बर्बादी के रूप में भुगत रहे हैं, वैसी नीतियां बोलीविया में लगभग पंद्रह वर्षों से लागू हो रही थीं। तीन वर्षों पहले वहां के राष्ट्र पति गोंजालो सांचेज ने इन नीतियों पर अमल की रफ्तार को और अधिक तेज कर दिया। सार्वजनिक सम्पत्ति व कारखानों को देशी पूंजीपतियों और विदेशी कंपनियों को धुंआधार बेचा जाने लगा। पूंजी के बूते गरीब किसानों को उजाड़कर बड़े-बड़े फार्म बनाने की रफ्तार और तेज हो गई। शहरों की सड़कों पर बेरोजगारोंकी भीड़ उमड़ पड़ी। अस्पतालों और पाठशालाओं तक की सुविधाओं से गरीब आबादी का अधिकतर हिस्सा वंचित हो गया। कुपोषण से मरने वाले बच्चों की और पेट की आग बुझाने के लिए शरीर तक बेंचने वाली स्त्रियों की संख्या बढ़ने लगी।

फिर पिछले मार्च में सब्र का बांध टूट गया। 27 मार्च को राजधानी लापाज में दसियों हजार मज़दूरों ने प्रदर्शन किया जिसमें कर्मचारी, शिक्षक, बेरोजगार नौजवान और छात्र भी शामिल हो गये। पुलिस दमन से एक मजदूर की मौत और हजारों की गिरफ्तारी ने आग में घी का काम किया। राजधानी लापाज की सड़कों पर भड़की लपटें दूर-दराज के देहातों तक फैल गईं। आपातकाल की घोषणा और दमन के बावजूद आन्दोलन अभी जारी है।

इससे न सिर्फ बोलीविया के धनपति बल्कि अमेरिकी राजधानी वाशिंगटन में बैठे उनके साम्राज्यवादी बड़े भाई भी चिन्तित हो गये है। चिन्ता सिर्फ बोलीविया की नहीं है। लाख कोशिशों के बाावजूद लातिन अमेरिका के ही देश पेरू की क्रान्ति को कुचलने में वे सफल नहीं हो सके हैं। ऐन पिछवाड़े, मेक्सिको के चियापास प्रांत में तीन वर्ष पहले भड़का किसानों का हथियारबंद जपाटिस्ता आन्दोलन अन्य प्रांतों में भी फैलने लगा है। कोलम्बिया, अल सल्वाडोर, चीले आदि देशों में संघर्ष की चिंगारियां फिर से फूटने लगी हैं। अमेरिकी डाकू समझने लगे हैं कि लातिन अमेरिका फिर जाग रहा है। वहां क़ा मेहनतकश फिर से उठ खड़ा होने के लिए अंगड़ाई ले रहा है।

हर शहर, हर फैक्ट्री की एक ही कहानी

मालिकान बढ़ा रहे हैं लूट और शोषण, छीन रहे हैं अधिकार
मजदूर बिखर रहे हैं, नेताओं के हाथों हैं लाचार

देश में जैसे-जैसे मजदूर आंदोलन कमजोर हुआ है, वैसे-वैसे पूंजीपतियों और उनकी सरकारों ने मजदूर हितों पर हमले तेज कर दिये है। पिछले कुछ सालों में, खासकर नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद से सारे पूंजीपति वर्ग ने एकजुट होकर और बहुत सीनाजोरी के साथ मजदूरों पर हमला बोल दिया है।

लम्बी लड़ाइयों के बाद कुरबानी देकर हासिल किये गये महत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकार मजदूरों से छीने जा रहे है, ज्यादा से ज्यादा काम कराकर कम से कम भुगतान करने की नई-नई चालें चली जा रही है और मजदूरों की हर आवाज को कुचल डालने की साजिशें तेज हो गई है।

आज से पचास-सौ साल पहले पूंजीपति जिस बर्बर और नंगे ढंग से मजदूरों को लूटते-खसोटते थे, आज फिर वही जमाना लाने की कोशिश हो रही है। यहां तक कि अच्छे-खासे कारखानों में मजदूरों को बंधुआ रखकर काम कराया जा रहा है।

दूसरी ओर मजदूर आपस में पहले से कहीं ज्यादा बंटता जा रहा है। ज्यादातर ट्रेड यूनियनों का नेतृत्व चवन्नी-अठन्नी की लड़ाई लड़ते-लड़ते अब इस काबिल भी नहीं रह गया है कि मजदूर के हितों की रक्षा के लिए कमर कसकर मैदान में उतर सके।

'बिगुल' के दो अंकों को लेकर अलग-अलग शहरों-कस्बों के कारखानों, वर्कशाप, मजदूर बस्तियों आदि में जाने वाले साथियों ने इस बारे में अपने जो अनुभव हमें बताये है वह भी यही कहानी कहते है। इनमें से कुछ जगहों के अनुभवों को हम संक्षेप में यहां प्रस्तुत कर रहे है। 'बिगुल' के आगे के अंकों में हम एक-एक के बारे में विस्तार से रिपोर्ट भी छापेंगे। पाठकों से भी हमारा अनुरोध है कि अपने इलाके की ऐसी चीजों के बारे में हमें लिखकर भेजें। — सम्पादक

एवरेडी फ्लैश लाइट फैक्ट्री, लखनऊ

भोपाल में हजारों लोगों को मौत के घाट उतार देने वाली हत्यारी कम्पनी यूनियन कार्बाइड से कुछ साल पहले इस फैक्ट्री को खरीदने वाला भारतीय पूंजीपति खेतान मजदूरों को लूटने और दबाने के मामले में उससे भी चार कदम आगे ही निकला है।

इस समय फैक्ट्री में पौने नौ घंटे की पारी है। जिसको बढ़ाकर साढ़े नौ घंटे करने और साथ ही वर्कलोड ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने के लिए मैनेजमेण्ट दबाव डाल रहा है। मजदूरी, काम की शर्तों आदि के बारे में मैनेजमेण्ट यूनियनों के साथ तीन-तीन साल का समझौता करता रहा है लेकिन पिछले दो साल से नया समझौता करने और वेतन बढ़ाने की मांग को मैनेजमेण्ट किसी न किसी बहाने से टाल रहा है।

फैक्ट्री में मजदूरों की कई यूनियनें होने का पूरा लाभ मैनेजमेण्ट उठाता है। पिछले दिनों उसने मोहनलालगंज की अदालत से इस बात पर 'स्टे' ले लिया है कि मजदूर अपनी मांगों के लिए धरना-प्रदर्शन-मीटिंग आदि नहीं कर सकते। अभिव्यक्ति की आजादी के बुनियादी अधिकार पर इस हमले का भी जोरदार विरोध नहीं किया जा पा रहा है।

जगदीशपुर इंडस्ट्रियल एरिया

जगदीशपुर आधुनिक पूंजीवाद की बर्बरता, नंगे शोषण और झूठ-फरेब की एक जीती-जागती मिसाल है। एक ओर यहां विशालकाय आधुनिकतम कारखाने हैं तो दूसरी ओर बिल्कुल छोटे-छोटे वर्कशाप भी हैं। लेकिन मजदूरों को लूटने में कोई किसी से पीछे नहीं है।

इंडो-गल्फ फर्टिलाइजर में 1000 से अधिक नियमित कर्मचारी हैं तो कम से कम इतनी ही संख्या में कैजुअल और ठेके के मजदूर भी हैं जो कई-कई साल से दिहाड़ी पर काम करते चले आ रहे हैं। **बी.एच.ई.एल.** के कारखाने में सैकड़ों ऐसे मजदूर हैं जो फैक्ट्री लगने के समय से ही कैजुअल के रूप में काम करते चले आ रहे हैं। **एग्रो पेपर** की तीन मिलों में आधे से अधिक मजदूर कैजुअल हैं जिन्हें सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती। 30-35 रुपए की दिहाड़ी पर इनको आठ घण्टे खटाने के बाद केवल 15 रुपये पर चार-चार घंटे ओवरटाइम कराया जाता है। ऐसे ज्यादातर मजदूर आसपास के जिलों से आकर काम करते हैं और 12 से 14 घंटे की कमरतोड़ मेहनत के बाद किसी तरह बस अपना पेट भर पाते हैं। बहुतेरे मजदूर अपने परिवारों को गांव पर छोड़कर यहां छोटी-छोटी कोठरियों में रह रहे हैं।

कोई भी यूनियन इन कैजुअल मजदूरों के सवाल को नहीं उठा रही है। इनके बीच से अपनी यूनियन बनाने की कोई कोशिश होती भी है तो मैनेजमेण्ट इसकी भनक लगते ही ऐसे मजदूरों को तुरन्त निकाल देता है। जबकि संगठन बनाने का अधिकार संविधान में दिया हुआ बुनियादी अधिकार है।

जगदीशपुर में लगी तमाम सारी छोटी-छोटी फैक्ट्रियों में काम करने वाले हजारों मजदूरों की हालत बदतर है। ज्यादातर में मजदूर हितों से सम्बन्धित कानूनों का पालन नहीं होता और न ही उनकी आवाज को उठाने वाली कोई यूनियन है। एक सीमेंट फैक्ट्री में तो मध्यप्रदेश के आदिवासी मजदूरों को बंधुआ रखकर काम कराया जाता है। ज्यादातर फैक्ट्रियों में दिखाने के लिए आठ घंटे की शिफ्ट बंधी है और शिफ्ट छूटने के समय घंटी या भोंपू भी बजता है। लेकिन असलियत में मजदूरों से दस, बारह या चौदह घण्टे तक काम कराया जाता है। प्राविडेंट फण्ड, पेंशन आदि की बात तो छोड़ दीजिए, बहुतेरे मजदूरों का दुर्घटना बीमा तक नहीं है।

सरकार ने इंडस्ट्रियल एरिया के लिए किसानों की जमीनें जब्त करने के समय वादा किया था कि हर परिवार के एक व्यक्ति को रोजगार दिया जायेगा। लेकिन इस मामले में पूरी धोखाधड़ी की गई। ऐसे बीसियों परिवारों के लोग आठ-नौ साल से रोजगार के लिए चक्कर काट रहे हैं। जिन लोगों को रोजगार मिला भी उनमें से ज्यादातर कैजुअल या निचली श्रेणी में बने हुए हैं।

इंडस्ट्रियल एरिया बनते समय यहां के लोगों को काफी सब्जबाग दिखाये गये थे, लेकिन आज कुछ बड़ी फैक्ट्रियों को छोड़कर जगदीशपुर उजाड़ होता दिखता है। शुरू में यहां सैकड़ों छोटे-बड़े कारखाने लगने थे। इनमें से बहुत से के मालिक तो सब्सिडी का पैसा खाकर पहले ही बैठ गये। और पिछले 4-5 सालों में राव-मनमोहन गिरोह की नई आर्थिक नीतियों के चलते सारे देश की तरह जगदीशपुर के छोटे-मझोले कारखाने बड़ी तादाद में बंद हुए हैं जिसका सबसे ज्यादा असर मजदूरों पर पड़ा है।

बेरोजगार मजदूरों की मजबूरी का फायदा उठाकर पूंजीपति मनमानी शर्तों पर अपने यहां काम कराते हैं।

धुंआ खायें हम, मलाई मारें सेठ!

जगदीशपुर के एक किसान की यह टिप्पणी अपने आप में बहुत कुछ बता देती है।

जगदीशपुर के आसपास की ग्रामीण आबादी में पूंजीपतियों की धोखाधड़ी के करण तो गुस्सा है ही, साथ ही तमाम कारखानों द्वारा फैलाये जाने वाले खतरनाक प्रदूषण को लेकर भी असन्तोष है। यहं मौजूद दो-दो सीमेंट फैक्ट्रियां लगातार जहरीला धुआं उगलती रहती हैं। कागज उद्योग सबसे ज्यादा प्रदूषण करने वाले उद्योगों में से एक हैं। यहां तीन-तीन कागज मिलें हैं जो लाखों लीटर पानी जमीन से खींचती हैं और फिर गंधक और दूसरे रसायन मिला हुआ गंदा पानी निकालती हैं। इसके अलावा ज्यादातर फैक्ट्रियों से निकलने वाले कचरे का खतरनाक असर यहां के हवा-पानी और मिट्टी पर पड़ रहा है।

ऐसे हालात देश भर में पैदा हो रहे हैं। इसके खिलाफ किसानों और मजदूरों की एकजुटता के दम पर ही लड़ा जा सकता है।

बेकारी के शिकार बदहाल मजदूरों की खुदकुशी और बीमारियों से मौत का जिम्मेदार कौन?

पिछले वर्ष के शुरू में भुखमरी से परेशान तेलंगाना के हथकरघा मजदूरों की आत्महत्याओं की खबरें अखबारों में छपी थी। वर्ष के अंत में, ग्वालियर के जे.सी. टेक्सटाइल मिल की बंदी के बाद बड़े पैमाने पर बेकार मज़दूरों द्वारा आत्महत्या की और विभिन्न बीमारियों से मौत की खबरें प्रकाश में आई।

लखनऊ की स्कूटर इंडिया फैक्टी बन्दी के कगार पर है। मैनेजमेंट ने धोखाधड़ी करके सैकड़ों मजदूरों को रिटायर करवा दिया। इनमें से अनेक मजदूर आत्महत्या कर चुके हैं या मानसिक बीमारी के शिकार हो गये हैं।

ग्वालियर की जे.सी. टेक्सटाइल मिल अप्रैल 1992 में बन्द हुई। तीन वर्ष बाद सितंबर 1995 में टेक्सटाइल मज़दूरों की कालोनी में सर्वेक्षण से मज़दूरों की आत्महत्याओं और अकाल मौतों की सच्चाई सामने आई। उनकी यूनियन के नेता के अनुसार पिछले दो वर्षों में वहां 37 मज़दूरों ने अत्महत्या की और सौ से अधिक किसी न किसी बीमारी के कारण मर गये।

फूलसिंह और रामहेट इन्हीं 37 मज़दूरों में शामिल थे। फूलसिंह जे.सी.टी. मिल की बंदी के पूर्व 15 वर्षों से कुशल मजदूर था। परिवार की लगातार फाकाकशी से तंग आकर उसने आत्महत्या कर ली। रामहेट गंभीर रूप से बीमार अपनी पत्नी का इलाज नहीं करा पा रहा था। उसे कहीं से उधार तक नहीं मिला क्योंकि उसके सभी साथी मजदूरों की भी आर्थिक हालत वैसी ही थी। गहरी निराशा और निरुपायता की मानसिकता में उसने भी जहर खा लिया।

पूंजीवाद की मौत हमारे जिन्दा रहने की शर्त बनती जा रही है!

फूलसिंह, रामहेट और उनके साथी मजदूरों ने आत्महत्या की या नई आर्थिक नीतियों की राक्षसी ने उन्हें अपना शिकार बना लिया?

कलकत्ता के जूट मिलों, कानपुर और अहमदाबाद के अधिकांश पुराने कारखानों, पूरे देश की पुरानी चीनी मिलों और तमाम परंपरागत उद्योगों की यही स्थिति है। वे या तो बंद हैं या बंद होने के कगार पर। प्रति वर्ष लाखों मजदूर बेकार हो रहे हैं। दलाल, नपुंसक ट्रेडयूनियनें उनकी दो जून की रोटी के अधिकार तक के लिए आवाज़ नहीं उठा पा रही हैं। यह है भूमण्डलीकरण के दौर में, भारत और ऐसे तमाम गरीब देशों की साम्राज्यवादी-पूंजीवादी लूट की सच्चाई।

क्या हमारी ज़िन्दगी के लिए इस जालिम व्यवस्था की मौत जरूरी नहीं हो गई है? क्या क्रान्तिकारी मजदूर आन्दोलन को बिना फिर से खड़ा किये यह हो सकता है? - कतई नहीं।

नारी सभा

हम नारी मुक्ति आंदोलन के हिस्से हैं

क्योंकि

औरतों का काम कभी पूरा नहीं होता और या तो
पैसे कम मिलते है या नहीं मिलते और काम या तो
उबाऊ होता है या फिर घिसापिटा और छंटनी में भी सबसे
पहले हम ही गिनी जाती है और हमारे काम से ज्यादा
महत्वपूर्ण हमारा रूपरंग है और अगर हम बलात्कार के
शिकार हो जाएं तो गलती हमारी है और अगर हमें पीटा
जाए तो जरूर हमने उकसाया होगा और अगर हम विरोध
करें तो हम चिड़चिड़ी कुतिया है और अगर हम सहवास का
आनंद ले तो हम कामोन्मत है और अगर न लें तो
हम ठंडी भावहीन है
और अगर हम डाक्टर से बहुत सवाल करें तो हम
मानसिक रोगी है और अगर हम बच्चों की सामुदायिक
देखभाल की अपेक्षा करें तो हम स्वार्थी है और अगर हम
अपने अधिकारों के लिए खड़े हों तो हम आक्रामक
'मर्दाना औरतें' और है और अगर हम चुप रहे तो ठेठ
कमजोर औरतें है और अगर हम शादी करना चाहें तो
हम मर्दों को फंसा रही है और अगर हम न करना
चाहें तो अस्वाभाविक है और क्योंकि अभी भी हमें कोई
उपयुक्त और सुरक्षित गर्भ निरोधक नहीं मिल सकता है
जबकि आदमी चांद पर भी चल सकता है और अगर हम
गर्भ नहीं चाहती या नहीं चाह सकती तो गर्भपात के लिए
हमें अपराधी महसूस करना चाहिए और
...बहुत और बहुत सारे दूसरे कारणों से हम नारी मुक्ति
आंदोलन के हिस्से है।

एशिया एवं प्रशान्त क्षेत्र के छात्रों के एसोसिएशन द्वारा जारी एक पर्चा

मेहनतकश अवाम को चुनना है...

(पेज 8 से आगे)

भारत के इजारेदार पूंजीपतियों का हिस्सा कितना हो, क्षेत्रीय पूंजीपतियों का हिस्सा कितना हो और मुनाफे की खेती करने वाले भूस्वामियों का हिस्सा कितना हो!

यह स्वाभाविक ही है। लुटेरों में लूट के माल को लेकर झगड़ा तो चलता ही रहता है। बस एक बात तय है कि आम जनता को लूटने और विरोध करने पर कुचलने के मामले में ये सभी एक हैं और आज के राजनीतिक हालात ने वर्गीय हितों की इस बुनियादी एकता को एकदम बेपर्द कर दिया है।

नई सरकार का कहना है कि उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों को लागू करते हुए वह समाज के निचले तबकों और राष्ट्रीय हितों का ध्यान रखेगी। यह सब इसलिए कि जनता के असंतोष को काबू में रखा जा सके। अपने अंतिम दिनों में नरसिंह राव की सरकार भी ऐसी ही बातें करने लगी थी।

अवसरवाद के और कितने नमूनों की बात की जाये! भ्रष्टाचार-विरोध के मसीहा वी.पी.सिंह पशुपालन घोटाला और हवाला काण्ड में अपने दल के लोगों के भी शामिल होने के मामले में आज चुप हैं। जनता दल के नेता सत्ता में आते ही जिन कांग्रेसी घोटालेबाजों को सजा देने की बातें करते थे आज उन्हीं के साथ संसद के गलियारों में गलबहियां डाले घूम रहे हैं।

इन तमाम गलाजतों ने एक बात साफ कर दी है। वह यह कि मौजूदा चुनावी राजनीति के दायरे के भीतर काम करने वाली किसी भी पार्टी या किसी भी गठबंधन की सरकार उन्हीं नीतियों पर अमल करने के लिए मजबूर है, जो नरसिंह राव की सरकार ने शुरू की थी। **लगातार बढ़ती मंहगाई, बेरोजगारी का कोई समाधान अब इस व्यवस्था के दायरे के भीतर संभव ही नहीं रह गया है। यदि कोई समाधान है तो उसे इस पूंजीवादी व्यवस्था को तबाह करके ही हासिल किया जा सकता है।**

त्रिशंकु संसद, खिचड़ी सरकार और राजनीतिक अस्थिरता

मौजूदा त्रिशंकु संसद, खिचड़ी सरकार और राजनीतिक अस्थिरता वास्तव में पूरे पूंजीवादी ढांचे के संकट के चिन्ह और संकेत हैं। साम्राज्यवादियों और बड़े-छोटे देशी पूंजीपतियों के बीच एक ओर जहां खुली पूंजीवादी लूट की नीतियों को लागू करने के सवाल पर एकता है, वहीं हिस्से की बंदरबांट को लेकर झगड़ा भी है। अपनी पूंजी के अम्बार को लगाकर जनता को ज्यादा से ज्यादा निचोड़कर पूरी दुनिया के पूंजीपति जो अकूत मुनाफा कमा रहे हैं, उससे उनका पूंजी का अम्बार और बढ़ता जा रहा है। संकट और गहरा होता जा रहा है। मंदी लगातार जारी है। दूसरी तरफ मेहनतकश अवाम, खासकर भारत जैसे गरीब देशों की जनता की कंगाली और तबाही बेहिसाब है। संकट की इस घड़ी में जनता के दुश्मन सभी छोटे-बड़े लुटेरे आपस में कुत्तों की तरह लड़ रहे हैं। उनके अलग-अलग धड़े आपस में खींचतान मचा रहे हैं। वे लगातार इस दुविधा और चिन्ता में डूबे हैं कि कौन सी पार्टी आज सबसे अधिक भरोसेमन्द हो सकती है।

त्रिशंकु संसद, खिचड़ी सरकार और राजनीतिक अस्थिरता इसी सच्चाई को प्रकट कर रही है।

दरअसल भारतीय पूंजीवाद के कमजोर-विकलांग बीमार टट्टू ने पूंजीवादी सामाजिक-राजनीतिक ढांचे की छकड़ा गाड़ी को घसीटते-घसीटते एक बंद गली के आखिरी मुकाम के करीब पहुंचा दिया है।

आम जनता की तबाही आने वाले दिनों में इतनी विकट होगी कि जनता को बरगलाने, फुसलाने, बहकाने की तमाम तिकड़में बेअसर हो जायेंगी। "स्वदेशी-जागरण" का झण्डा भी अब चिथड़ा हो गया है।

भ्रष्टाचार विरोध का बैलून पिचक गया है। सदियों से उत्पीड़ित दलितों का जो उभार भूमि सुधार, रोजगार, शिक्षा आदि प्रश्नों के साथ जुड़कर साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी संघर्ष की ताकत बन सकता था, उसे मण्डल और "सामाजिक न्याय" के नाम पर इस व्यवस्था के दायरे के भीतर समाहित कर लिया गया। पर सामाजिक न्याय के मसीहाओं का राजनीतिक आचरण कुछ ही वर्षों के भीतर खुद ही इन्हें बेनकाब कर देगा।

क्रांतिकारी मजदूर आन्दोलन की जिम्मेदारियां और चुनौतियां

लेकिन हाथ पर हाथ धरे यह सब कुछ होने का इन्तजार नहीं किया जा सकता। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में सच्ची सामाजिक क्रान्ति की पक्षधर क्रान्तिकारी शक्तियों को आज की पूंजीवादी राजनीति और अर्थनीति के हर छल-छद्म को उजागर करने और जनता के बीच व्यापक क्रान्तिकारी प्रचार की कार्रवाइयों में जी-जान से लग जाना होगा। जनता को जागृत, गोलबंद और संगठित करने के लिए आर्थिक-राजनीतिक मुद्दों पर संघर्ष में जुटने के साथ ही देश के स्तर पर एक सही-सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने की कोशिशें में नये सिरे से जुट जाना होगा।

यह बात आज भी सच है कि ट्रेड यूनियनें मजदूरों की राजनीतिक-आर्थिक पाठशालाएं हैं। इनकी इस भूमिका को साकार करने के लिए सर्वहारा क्रान्तिकारियों को तमाम पूंजीवादी ट्रेड यूनियनों के भीतर भी क्रान्तिकारी इकाइयां संगठित करनी होंगी और देश स्तर पर क्रान्तिकारी मजदूर आन्दोलन के नवोन्मेष की तैयारी करनी होगी। **ट्रेड यूनियन आन्दोलन का क्रान्तिकारीकरण आज की बुनियादी जरूरत और चुनौती है।** साथ ही गांव के गरीबों को, पूंजी की मार से अपनी जगह-जमीन से उजड़ते सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा की करोड़ों-करोड़ आबादी को संगठित किये बिना भारत में नई समाजवादी क्रान्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

और इन सभी कामों को अंजाम देने के लिए आज छात्रों-नौजवानों के बीच से क्रान्तिकारी कतारों में नई भरती के काम को भी तेज करना होगा।

मेहनतकशों का नारा – क्रान्तिकारी लोक स्वराज

मेहनतकश जनता को आज के हालात को जान-समझकर सबसे पहले यह बुनियादी बात समझनी होगी कि **नई आर्थिक नीतियों का विरोध 'स्वदेशी' के झण्डे तले या मौजूदा पूंजीवादी दायरे के भीतर कतई नहीं किया जा सकता।** मेहनतकश अवाम के सामने मुद्दा यह नहीं है कि देशी उद्योग धंधों के विकास के लिए विदेशी पूंजी के जकड़-दबाव को समाप्त किया जाये। देशी उद्योग के मालिकों और गांव के धनिक तबकों के हित भी आज विश्व पूंजीवादी तंत्र के मालिकों के साथ पूरी तरह जुड़ गये हैं। मेहनतकश अवाम और सभी पूंजीवादी वर्ग आज एक दूसरे के आमने सामने खड़े हैं। देशी पूंजीपतियों की सत्ता को उखाड़कर ही आज साम्राज्यवादी लूट का खात्मा किया जा सकता है और मेहनतकश आबादी की सच्ची, वास्तविक आजादी हासिल की जा सकती है।

आज का मुद्दा है पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली, राज्य व्यवस्था और समाज व्यवस्था को समाप्त करके इनके विकल्प का निर्माण करना- एक ऐसे समाज का निर्माण करना जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढांचे पर उत्पादन करने वाले मेहनतकशों का पूरा नियंत्रण हो। **'सारी सत्ता मेहनतकश को'** -- इस नारे का यही अर्थ है। क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य के नारे का यही मतलब है। यही नये दौर की नई क्रान्ति का नारा है। यही नई सर्वहारा क्रान्ति का नया नारा है। *यही साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी नई क्रान्ति का नारा है।*

क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य का जन्म एक नई सामाजिक क्रान्ति के गर्भ से ही हो सकता है, जब उत्पादन मुनाफे के लिए नहीं बल्कि लोगों की जिन्दगी की जरूरतें पूरी करने के लिए होगा। यह एक लम्बी प्रक्रिया होगी जिसके दौरान जनता सही मायने में अपने सार्विक मताधिकार का प्रयोग करते हुए नई संविधान सभा चुनेगी जो बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी को पूरी स्वतंत्रता और समान नागरिक अधिकार देने वाले संविधान और कानूनों का निर्माण करेगी।

क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य के अन्तर्गत जनता की छाती पर सवार अरबों के खर्चे से चलने वाली नौकरशाही का बोझ उतर जायेगा। विधायिका (संसद, विधान सभाएं), कार्यपालिका (सरकार और नौकरशाही), और न्यायपालिका (कोर्ट कचहरी) के कामों को सम्हालने के लिए ऊपर से नीचे तक हर स्तर पर जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों की संस्थाएं गठित की जायेंगी। गांव-मुहल्ला, स्कूल-कालेज, कारखाने-खेत -- हर स्तर पर जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के जरिये सभी निर्णय लिए जायेंगे। ये प्रतिनिधि आम जनता जैसी ही जिन्दगी बितायेंगे और उन्हें जब चाहे, अल्पमत-बहुमत द्वारा वापस बुलाया जा सकेगा। इस तरह सत्ता, शक्ति और निर्णय की ताकत वास्तव में जनता के हाथों में होगी।

भाड़े की सेना और पुलिस की जगह एक नई लोक सेना संगठित होगी जो साम्राज्यवाद और पूंजीवादी भितरघातियों से जनता की सत्ता की रक्षा करने के साथ ही उत्पादन के काम में भी हिस्सा लेगी और जनता पर बोझ नहीं होगी। सभी सक्षम लोगों को उत्पादन के काम में हिस्सा लेने का मौका मिलेगा और बेरोजगारी का नामोनिशान नहीं होगा। सट्टेबाजी, दलाली, भ्रष्टाचार और अपराध का केवल तभी खात्मा हो सकेगा। ऐसे लोक-स्वराज्य के अंतर्गत रोजगार के अतिरिक्त निःशुल्क समान शिक्षा और दवा-इलाज की सहूलियत सभी को समान रूप से हासिल होगी।

पूंजी की सत्ता का नाश करके ऐसे नये समाज के निर्माण के काम को सर्वहारा वर्ग की अगुवाई में मेहनतकश अवाम ही अंजाम दे सकता है।

चुनावी दंगल का तमाशबीन और निष्क्रिय भागीदार बनने की जगह अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए मेहनतकश अवाम के उठ खड़े होने का समय आ गया है।

कुछ लोगों के स्वार्थ और लोभ के लिए इंसानों को कुचलने के जितने साधन हैं हम उसके हर रूप के खिलाफ लड़ेंगे

मजदूरों के अपने लेखक मक्सिम गोर्की का उपन्यास 'मां' मजदूर वर्ग को नायक बनाकर लिखा गया पहला महान उपन्यास है। लेनिन ने इसको 'मजदूरों के लिए एक जरूरी रचना' बताया था। हमारे देश के भी हर जागरूक मजदूर को इसे पढ़ना चाहिए। यहां हम इस उपन्यास के नायक पावेल व्लासोव द्वारा अदालत में दिये गये बयान को छाप रहे हैं।

"हम समाज़वादी हैं। इसका मतलब है कि हम निजी सम्पत्ति के खिलाफ हैं। निजी सम्पत्ति की पद्धति समाज को छिन्न–भिन्न कर देती है, लोगों को एक–दूसरे का दुश्मन बना देती है, लोगों के परस्पर हितों में एक ऐसा द्वेष पैदा कर देती है जिसे मिटाया नहीं जा सकता। इस द्वेष को छुपाने या न्यायसंगत ठहराने के लिए वह झूठ का सहारा लेती है और झूठ, मक्कारी और घृणा से हर आदमी की आत्मा को दूषित कर देती है। हमारा विश्वास है कि वह समाज, जो इंसान को केवल कुछ दूसरे इंसानों को धनवान बनाने का साधन समझता है, अमानुषिक है और हमारे हितों के विरुद्ध है। हम ऐसे समाज की झूठ और मक्कारी से भरी हुई नैतिक पद्धति को स्वीकार नहीं कर सकते। व्यक्ति के प्रति उसके रवैये में जो बेहयाई और क्रूरता है उसकी हम निंदा करते हैं। इस समाज ने व्यक्ति पर जो शारीरिक तथा नैतिक दासता थोप रखी है; हम उसके हर रूप के खिलाफ लड़ना चाहते हैं और लड़ेंगे; कुछ लोगों के स्वार्थ और लोभ के हित में इंसानों को कुचलने के जितने साधन हैं हम उसके हर रूप के खिलाफ लड़ेंगे। हम मजदूर हैं; हम वे लोग हैं जिनकी मेहनत से बच्चों के खिलौनों से लेकर बड़ी–बड़ी मशीनों तक दुनिया की हर चीज तैयार होती है; फिर भी हमें ही अपनी मानवोचित प्रतिष्ठा की रक्षा करने के अधिकार से वंचित रखा जाता है। कोई भी अपने निजी स्वार्थ के लिए हमारा शोषण कर सकता है। इस समय हम कम से कम इतनी आजादी हासिल कर लेना चाहते हैं कि आगे चलकर हम सारी सत्ता अपने हाथों में ले सकें। हमारे नारे बहुत सीधे–सादे हैं: निजी सम्पत्ति का नाश हो – उत्पादन के सारे साधन जनता की सम्पत्ति हों – सत्ता जनता के हाथ में हो – हर आदमी को काम करना चाहिए। अब आप समझ गये होंगे कि हम विद्रोही नहीं हैं!"

पावेल धीरे से मुस्कराया और धीरे–धीरे अपने बालों में उंगलियां फेरने लगा। उसकी नीली आंखों की चमक पहले से बहुत बढ़ गयी थी।

"मैं तुमसे कहता हूं कि बस मतलब भर की बात कहो!" बूढ़े ने जोर से स्पष्ट स्वर में कहा और पावेल की ओर मुड़कर देखा। मां की कल्पना में यह बात आयी कि उस जज की निस्तेज बायीं आंख में लोलुपता और कुत्सा की चमक थी। तीनों जज उसके बेटे को देख रहे थे, उनकी नजरें उसके चेहरे पर जमी हुई थीं, ऐसा मालूम होता था कि वे अपनी पैनी नजरों से उसकी शक्ति चूसे ले रहे हैं; वे उसके खून के प्यासे लग रहे थे, मानो इससे उनके शक्तिहीन शरीर में फिर से जान आ जायेगी। परन्तु पावेल अपना लम्बा–चौड़ा बलिष्ठ शरीर लिए साहस के भाव से सीधा तनकर खड़ा था और अपना हाथ उठाकर कह रहा था:

"हम क्रान्तिकारी हैं और उस वक्त तक क्रान्तिकारी रहेंगे जब तक इस दुनिया में यह हालत रहेगी कि कुछ लोग सिर्फ हुक्म देते हैं और कुछ लोग सिर्फ काम करते हैं। हम उस समाज के खिलाफ हैं जिसके हितों की रक्षा करने की आप जज लोगों को आज्ञा दी गयी है। हम उसके कट्टर दुश्मन हैं और आपके भी और जब तक इस लड़ाई में हमारी जीत न हो जाये, हमारी और आपकी कोई सुलह मुमकिन नहीं है। और हम मजदूरों की जीत यकीनी है! आपके मालिक उतने ताकतवर नहीं हैं जितना कि वे अपने आपको समझते हैं। वही सम्पत्ति जिसे बटोरने और जिसकी रक्षा करने के लिए वे अपने एक इशारे पर लाखों लोगों की जान कुर्बान कर देते हैं, वही शक्ति जिसकी बदौलत वे हमारे ऊपर शासन करते हैं, उनके बीच आपसी झगड़ों का कारण बन जाती है और उन्हें शारीरिक तथा नैतिक रूप से नष्ट कर देती है। सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए उन्हें बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ती है। असल बात तो यह है कि आप सब लोग, जो हमारे मालिक बनते हैं, हमसे ज्यादा गुलाम हैं। हमारा तो सिर्फ शरीर गुलाम है, लेकिन आपकी आत्माएं गुलाम हैं। आपके कंधे पर आपकी आदतों और पूर्व धारणाओं का जो जुआ रखा है उसे आप उतारकर फेंक नहीं सकते। लेकिन हमारी आत्मा पर कोई बंधन नहीं है। आप हमें जो जहर पिलाते रहते हैं वह उन जहरमार दवाओं से कहीं कमजोर होता है जो आप हमारे दिमागों में अपनी मर्जी के खिलाफ उड़ेलते रहते हैं। हमारी चेतना दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है और सबसे अच्छे लोग, वे सभी लोग जिनकी आत्माएं शुद्ध हैं हमारी ओर खिंचकर आ रहे हैं; इनमें आपके वर्ग के लोग भी हैं। आप ही देखिए – आपके पास कोई ऐसा आदमी नहीं है जो आपके वर्ग के सिद्धान्तों की रक्षा कर सके; आपके वे सब तर्क खोखले हो चुके हैं जो आपको इतिहास के न्याय के घातक प्रहार से बचा सकें, आपमें नये विचारों को जन्म देने की क्षमता नहीं रह गयी है, आपकी आत्माएं निर्जन हो चुकी है। हमारे विचार बढ़ रहे हैं, अधिक शक्तिशाली होते जा रहे हैं, वे जन साधारण में प्रेरणा फूंक रहे हैं और उन्हें स्वतंत्रता के संग्राम के लिए संगठित कर रहे हैं। यह जानकर कि मजदूर वर्ग की भूमिका कितनी महान है, सारी दुनिया के मजदूर एक महान शक्ति के रूप में संगठित हो रहे हैं – नया जीवन लाने की जो प्रक्रिया चल रही है, उसके मुकाबले में आपके पास क्रूरता और बेहयाई के अलावा और कुछ नहीं है। परन्तु आपकी बेहयाई बहुत भोंडी है और आपकी क्रूरता से हमारा क्रोध और बढ़ता है। जो हाथ आज हमारा गला घोंटने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं वही कल साथियों की तरह हमारे हाथ थाम लेने को आगे बढ़ेंगे। आपकी शक्ति धन बढ़ाते रहने की मशीनी शक्ति है, उसने आपको ऐसे दलों में बांट दिया है जो एक–दूसरे को खा जाना चाहते हैं। हमारी शक्ति सारी मेहनतकश जनता की एकता की निरन्तर बढ़ती हुई चेतना की जीवन–शक्ति में है। आप लोग जो कुछ करते हैं वह पापियों का काम है, क्योंकि वह लोगों को गुलाम बना देता है। आप लोगों के मिथ्या प्रचार और लोभ ने पिशाचों और राक्षसों की अलग एक दुनिया बना दी है जिसका काम लोगों को डराना–धमकाना है। हमारा काम जनता को इन पिशाचों से मुक्त कराना है। आप लोगों ने मनुष्य को जीवन से अलग करके उसे नष्ट कर दिया है; समाजवाद आपके हाथों टुकड़े–टुकड़े की गयी दुनिया को जोड़कर एक महान रूप देता है और यह होकर रहेगा!"

पावेल रुका और उसने एक बार फिर ज़्यादा जोर देकर धीमे स्वर में कहा :

"यह होकर रहेगा!"

जर्मन कवि बर्तोल्त ब्रेख्त की कविता

खाने की टेबुल पर जिनके
पकवानों की रेलमपेल
वे पाठ पढ़ाते है हमको --
'संतोष करो, संतोष करो।'

उनके धंधों की खातिर
हम पेट काटकर टैक्स भरें
और नसीहत सुनते जायें --
'त्याग करो, भई त्याग करो।'

मोटी-मोटी तोंदों को जो
ठूंस-ठूंस कर भरे हुए,
हम भूखों को सीख सिखाते --
'सपने देखो, धीर धरो।'

बेड़ा ग़र्क देश का करके
हमको शिक्षा देते है --
''तेरे बस की बात नहीं
हम राज करें तुम राम भजो।''

वे और तुम

वे तुम्हें मार रहे है
जाने कब से
भाग्य की भोंथरी दरांतियों से
और तुम हो
कि बजाते आ रहे हो सहिष्णुता की झांझ
वे तुम्हें मार रहे है
जाने कब से
परम संतोष की संखिया से
और तुम हो
कि मांगते आ रहे हो दया की भीख ।
वे तुम्हें मारते रहेंगे
जबतक कि तुम पहुंच न लो
मन्दिर की वेदियों तक नाक के बल
और वे हंसेंगे होंठ तिरछे कर
याद करेंगे ईश्वर की मौत की तारीखें ।
हां, वे मार चुके है ईश्वर को
सदियों पहले
अपने मुनाफे के लोभ में
और घसीट चुके है
उसको भूमण्डलीय बाजार में
अब तो शेष बची है
ईश्वर की ममियां
बेचती हुई 'लहर पेप्सी ।

— घनश्याम, नरिया, वाराणसी

सरकार चाहे जिसकी बने, नई आर्थिक नीतियां जारी रहेंगी

(पेज 1 से आगे)

बेचने को मजबूर हो जाये।

नई आर्थिक नीति का चौथा अर्थ है, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी उन बुनियादी जरूरतों को भी बाजार में खरीदी-बेची जाने वाली चीज़ बना देना, जिन्हें पूरा करने का वायदा पहले पूंजीवादी ज़नतंत्र की सरकारें भी किया करती थीं (हालांकि ऐसा वे पूरी तरह कभी नहीं करती थीं)। शिक्षा का भी अब तरह-तरह से निजीकरण किया जा रहा है, ज्यादा से ज्यादा फीसें बढ़ाई जा रही हैं और शिक्षा को मुनाफे का धंधा बनाया जा रहा है। सरकारी अस्पतालों की रही-सही सुविधाओं को भी खत्म किया जा रहा है। प्राइवेट नर्सिंग होमों की बाढ़ सी आ गई है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और देशी पूंजीपतियों को दवाओं की कीमतें मनमाने ढंग से बढ़ाने की पूरी छूट दे दी गई है।

तबाही लाने वाले नतीजे सामने आने लगे हैं....

जिस समय देवेगोड़ा की नई सरकार की आर्थिक नीति की हम चर्चा कर रहे हैं, पिछले पांच वर्ष से जारी राव सरकार की नई आर्थिक नीति के नतीजे हमारे सामने हैं।

पूरे देश के लिए खुशहाली लाने का दावा करने वाली इन नीतियों पर अमल के पांच वर्षों के दौरान पहले से ही मौजूद करोड़ों बेरोजगारों की भीड़ में साढ़े तीन करोड़ नये बेरोजगार शामिल हो गये हैं। 15 करोड़ अर्द्धबेरोजगार खेत मजदूर और लगभग इतनी ही अर्द्ध बेरोजगार शहरी आबादी इसमें शामिल नहीं है। देश में इस समय 15 करोड़ बाल मजदूर हैं। मंहगाई बढ़ने की रफ्तार इन पांच वर्षों में आजादी के बाद की आधी सदी में सबसे अधिक रही है। देश के बहुतेरे पूंजीवादी समाजशास्त्रियों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि देश के ऊपर की पंद्रह फीसदी आबादी द्वारा जिंस अवधि में विलासिता पर खर्च बेतहाशा बढ़ा है, उसी अवधि के दौरान 85 फीसदी गरीब मेहनतकश आबादी और मेहनतकश तबके का खाने-पीने, दवा आदि जीने की बुनियादी चीजों पर खर्च काफी तेजी से घटता गया है। धनी-गरीब के बीच की खाई अत्यन्त तेजी से चौड़ी होती चली गई है।

मजदूर साथियो! पहचानो!
हमारी तबाही के जिम्मेदार कौन है?
उनके खिलाफ विद्रोह के लिए
उठ खड़े हो!
विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ो!

कानपुर, कलकत्ता, अहमदाबाद, बम्बई आदि पुराने औद्योगिक नगरों के जूट, कपड़ा, कताई, चमड़ा आदि के कारखानों में ताले लटकते जा रहे हैं। करोड़ों मजदूर अबतक छंटनी और बेकारी के शिकार हो चुके हैं। तमाम ऐसे उद्योगों को बीमार दिखाकर पूंजीपति वहां से अपनी पूंजी निकाल रहे हैं। अधिकांश सरकारी उद्योगों को बीमार और घाटे में दिखाकर पूंजीपतियों को सौंपा जा रहा है और उन्हें मनमाने ढंग से छंटनी की छूट दी जा रही है। करोड़ों बुनकर और परम्परागत पेशों में लगे लोग उजड़ चुके हैं। आंध्र में बुनकरों द्वारा आत्महत्या और ग्वालियर के कपड़ा मिल मज़दूरों द्वारा आत्महत्या की खबरें तो अखबारों में आ भी गईं पर हजारों ऐसी घटनाएं दबी रह गईं। एक अध्ययन के अनुसार **पिछले पांच वर्षों के दौरान देश के 93 हज़ार लोगों ने या तो आत्महत्या की है या इन नीतियों के खिलाफ संघर्ष करते हुए मारे गये हैं। भूख और कुपोषण से होने वाले रोगों और मौतों में लगभग चौगुने की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है।**

देश को खुशहाल बनाने और विदेशी कर्जे पूरी तरह उतार देने के दावे के साथ राव-मनमोहन गिरोह ने नई आर्थिक नीतियां लागू कीं। पर आलम यह है कि इन नीतियों पर अमल के पांच सालों के दौरान विदेशी कर्ज 13 खरब से बढ़कर 38 खरब रुपये हो गया। पांच साल पहले ब्याज चुकाने में 2 खरब 65 अरब 63 करोड़ रुपये खर्च होते थे और अब इस मद में 6 खरब रुपये खर्च हो रहे हैं। देश के बजट का 47 प्रतिशत हिस्सा कर्ज का ब्याज चुकाने में खर्च हो जाता है। दुनिया के वित्तीय महाजनों की सूदखोरी की प्यास मेहनतकश जनता के पोर-पोर से खून निकालकर ही बुझाई जा रही है।

बाहर से सालाना खरबों की जो पूंजी आ रही है, उसका एक बहुत ही छोटा हिस्सा आम गरीब जनता की बुनियादी ज़रूरत की चीजें बनाने में लग रहा है। इस पूंजी का लगभग 80 फीसदी या उससे भी अधिक हिस्सा सट्टेबाजी, विज्ञापन, बीमा, जमीन की खरीद में और तरह-तरह की कार, मोटर साइकिल, स्कूटर, शराब, फ्रिज, टी.वी., मेकअप के सामान, कोल्ड ड्रिंक आदि बनाने में खर्च हो रहा है। इस उत्पादन से ग़रीब मेहनतकश आबादी का भला क्या लेना-देना ?

यही हैं वे विनाशकारी, जनविरोधी लुटेरी आर्थिक नीतियां जो कांग्रेसी सरकार ने लागू कीं और भारत में पूंजीवादी शासन और साम्राज्यवादी-पूंजीवादी लूट के एक नये दौर का सूत्रपात किया।

देवेगौड़ा की खिचड़ी सरकार की आर्थिक नीतियां.... आगे–आगे देखिए होता है क्या!

पूंजीवादी लूटतंत्र में क्षेत्रीय सूबेदारी चाहने वाली क्षेत्रीय पार्टियों (तेलगुदेशम, असम गण परिषद, द्रमुक, तमिल मानिला कांग्रेस आदि), लाल कमरिया ओढ़कर सत्ता सुख की मलाई चाटने वाले चुनावी वामपंथियों और भारतीय पूंजीपतियों की सबसे पुरानी और अबतक सबसे भरोसेमंद रही पार्टी कांग्रेस के चोट्टों-घोटालेबाजों की मदद से केन्द्र में सत्तासीन नवगठित संयुक्त मोर्चा की खिचड़ी सरकार के मुखिया देवेगौड़ा ने साफ-साफ, दो टूक शब्दों में कहा है कि **उनकी सरकार आर्थिक सुधार की उन नीतियों पर अमल करती रहेगी, जिनकी शुरुआत करने वाले नरसिंह राव हैं।**

आर्थिक नीतियां तैयार करने वाले एक भूतपूर्व कांग्रेसी कुचक्री और पूंजीपतियों-साम्राज्यवादियों के भरोसेमंद चिदम्बरम को वित्तमंत्री बनाकर देवेगौड़ा ने अपनी मंशा साफ कर दी है और अपनी सरकार का चरित्र नंगा कर दिया है।

सच पूछा जाये तो भारतीय अर्थनीति और राजनीति के किसी गंभीर अध्ययनकर्ता को पूंजीवादी राजनीति के दायरे में काम करने वाली किसी भी चुनावी पार्टी से अब यह उम्मीद भी नहीं रह गई थी कि वह जारी आर्थिक नीतियों में किसी तरह का अहम बदलाव ला सकेगी। नई आर्थिक नीतियों को लागू करना उन तमाम गरीब देशों के शासक वर्ग की आज की जरूरत और मजबूरी दोनों है, जिन्होंने उपनिवेशवाद-नवउपनिवेशवाद के बाद के दौर में राजनीतिक सत्ता हासिल करने के बाद विकास के पूंजीवादी रास्ते पर चलना शुरू किया था। वैसे इन देशों में साम्राज्यवादी लूट पहले भी मौजूद थी, जो अब और व्यापक और गहरी हो गई है।

चीजों को बदलने के लिए चीज़ों को समझना होगा
चीजों को बदलने के दौरान खुद को भी बदलना होगा।
क्रान्ति के लिए जरूरी है
क्रान्तिकारी चेतना से लैस होना!

जैसे भारत का ही उदाहरण लें। 1947 के बाद, साम्राज्यवादी पूंजी की जकड़ कम करने और जनता की लूट में अपना हिस्सा बढ़ाने तथा अपनी राजनीतिक आजादी को कायम रखने के लिए नेहरू सरकार ने विदेशी पूंजी के लिए दरवाजा पूरी तरह खोलने की जगह जनता से पैसे निचोड़कर बड़े-बड़े सरकारी कारखाने लगाये और बैंकों के जरिए देशी पूंजीपतियों को भी पूंजी मुहैया कराई। पर धीरे-धीरे यह संभावना पूरी तरह निचोड़ ली गई और फिर पूंजी और कल-कारखानों के लिए तकनोलॉजी के लिए भारतीय पूंजीपतियों की सत्ता को विदेशी लुटेरों के सामने घुटने टेकने पड़े और देशी बाजार के दरवाजे उनके लिए पूरी तरह खोल देने पड़े। एक पूंजीवादी दुनिया के मालिकों के मातहत ही वे रह सकते थे और उनकी हैसियत आखिरकार लूट के माल के बंटवारे में छोटे साझीदार की ही हो सकती थी। साम्राज्यवाद का वर्तमान दौर आर्थिक नवउपनिवेशवाद का दौर है, जिसमें यह स्थिति पूरी तरह आज की वास्तविकता बन चुकी है।

पाठकों को याद होगा कि चुनाव के पहले ही अमेरिकी राजदूत से लेकर भारतीय पूंजीपतियों के विभिन्न संगठनों ने यह भरोसा जाहिर किया था कि सरकार चाहे जिस किसी भी दल की आये, "आर्थिक सुधारों" की दिशा को पलटा नहीं जा सकेगा। उनकी चिन्ता सिर्फ यह थी कि अल्पमत या मिली-जुली सरकार बनने की स्थिति में राजनीतिक अस्थिरता बनी रहेगी, जिसका प्रभाव आर्थिक सुधारों की रफ्तार पर पड़ेगा। उनके अंदेशे के बावजूद यही हुआ, क्योंकि पूंजीवादी राजनीति और आर्थिक दायरे में सबकुछ हू-ब-हू वैसा हो ही नहीं सकता जैसाकि पूंजीपति वर्ग चाहता है। उसके भीतर के कुछ ढांचागत अन्तरविरोध और कुछ मजबूरियां भी होती हैं।

तेरह दिन की भाजपा सरकार ने भी, जो हिन्दुत्व का फासिस्ट नारा उछालकर और स्वदेशी का राग अलापकर संसद में सबसे बड़ी पार्टी बनी थी, उसने भी सत्ता सम्हालते ही नई आर्थिक नीति को न बदलने का आश्वासन देशी-विदेशी पूंजीपतियों को दिया था और वे आश्वस्त भी हुए थे। पर सीटों का गणित किसी भी तरह से उसके पक्ष में नहीं था और उन्हें बेआबरू होकर सरकारी बेंच से हटकर विपक्ष में बैठना पड़ा।

अब शासक वर्गों के पास एक ही विकल्प था - कांग्रेसी समर्थन से रामो-वामो की सरकार बनना। चूंकि यह आकाओं की जरूरत थी, इसलिए कल के राजनीतिक दुश्मन रातों रात सहयोगी बन गये। देखते-देखते संयुक्त मोर्चा गठित हो गया और कांग्रेस तथा क्षेत्रीय दलों के गठबंधन के समर्थन से देवेगौड़ा की खिचड़ी सरकार सत्तासीन हो गई।

संकटों और मजबूरियों के इस दौर में अवसरवाद और दोमुहेपन के भांति-भांति के नमूने सामने आने ही थे।

कल तक नई आर्थिक नीतियों के विरोध में चिल्लाते-चिल्लाते जनता दल और समाजवादी पार्टी के जिन नेताओं के गले फट गये थे, वे आज उन्हीं नीतियों को "समय की जरूरत" और "एकमात्र संभव रास्ता" बता रहे हैं, विदेशी पूंजी आयात के लाभ बता रहे हैं और पूंजीपतियों को भरोसा दिला रहे हैं। और सबसे बुरी स्थिति तो नकली वामपंथियों की है। कल तक ये सबके सब कांग्रेस पर "राष्ट्रीय हितों" का सौदा करने का आरोप लगा रहे थे और उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों के चलते मज़दूरों की छंटनी, बेरोजगारी, मंहगाई आदि की बातें कर रहे थे। अब ये उसी कांग्रेस के साथ मिलकर देवेगौड़ा की सरकार को समर्थन दे रहे हैं। सच पूछें तो यह उनकी मज़बूरी थी। उनके सामने दूसरा कोई रास्ता नहीं था। उनके वामपंथ की असलियत इसी तरह से उजागर होनी थी।

वास्तव में इन सभी दलों का दोमुंहापन तो पहले ही उजागर हो चुका था। प. बंगाल में वामपंथियों ने कर्नाटक और बिहार में जनता दल की सरकारों ने, उ.प्र. में मुलायम सिंह की सरकार ने और महाराष्ट्र में "स्वदेशी" के ध्वजवाहक भाजपा-शिवसेना की सरकारों ने सत्तासीन होने पर उन्हीं आर्थिक नीतियों को लागू किया जिनका विरोध करने का वे स्वांग रचती आई थीं।

नई आर्थिक नीतियों के अमल पर आम सहमति के दायरे के भीतर शासक वर्गों के बीच के झगड़े-विवाद, खींचतान, मोल-तोल सिर्फ इस बात को लेकर हैं कि मेहनतकश अवाम को निचोड़कर उगाहे गये मुनाफे में साम्राज्यवादी चौधरियों का हिस्सा कितना हो,

(पेज 6 पर जारी)

स्वत्वाधिकारी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः मुद्रण प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः डा. दूधनाथ सम्पादकीय कार्यालयः द्वारा श्री बी.डी. सक्सेना, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ, सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ